दलित साहित्य: परिभाषा के बदलते आयाम

Dr.Mohanan V.T.V

Assistant Professor, Department of Hindi, Sir Syed College, Taliparamba, Kannur,Kerala
mohananhcu@gmail.com

Abstract

दलित कविता की अलग पहचान है। वह कल्पना केन्द्रित तथा भावानुकूल साहित्य को नकारती है। हर दलित साहित्यकार का वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभव है। उसके आधार पर वह साहित्य रचता है। उसके सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक जीवन पक्ष का कोई भेद नहीं है। रसोत्पत्ति की भावना को नकारनेवाला दलित कवि साहित्य के भाव पक्ष को अधिक महत्व देता है, इसलिए कि वह मानता है कि साहित्य उसके वैयक्तिक जीवनानुभवों का आइना है। वहाँ कलात्मकता का पराजय निश्चित है और भावात्मक साहित्य कला पक्ष को पराजित भी करता है। हिन्दी दलित साहित्य भाग्यवाद, अवतारवाद, पुनर्जन्म या परंपरावादी साहित्यिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध रोष, आक्रोश एवं कठोर शब्दों का प्रयोग करता है। वह अलंकार, छन्द, शाब्दिक चमत्कार आदि को हेय मानता है।

Main Content

अंबेड़करवादी तथा मार्क्सवादी चिंतन परंपराओं के बीच ‘ दलित साहित्य ’ विषय पर काफी चिंतन- मनन हुआ। ‘ दलित साहित्य ’ किसे कहते हैं? ‘ दलित साहित्यकार ’ कौन है आदि विषयों पर विद्वानों ने काफी सवाल खड़े किये। चर्चा- परिचर्चाएँ हुईं, मगर विद्वानों में ‘दलित साहित्य’ के प्रयोग के संदर्भ में मतभेद रहे हैं।

‘ दलित साहित्य ’ की विवेचना सर्वप्रथम सन् 1958 में दलितों के एक मात्र पत्र ‘प्रबुद्ध भारत ’ नामक साप्ताहिक ने की है जिसके संपादकीय में संपादक दा. ता. रूपवते ने लिखा, ‘इस विचित्र समाज व्यवस्था के विरोध में दलित समाज ने निरंतर विद्रोह खड़ा किया है। इस विद्रोह का इतिहास ही दलित साहित्य है’। 1958 के ‘प्रबुद्ध भारत’ में लिखा है, ‘अक्तूबर 1956 में ड़ॉ. बाबा साहेब अंबेड़कर ने अपने लाखों अनुयायियों के साथ नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। इस धर्म चक्र परिवर्तन दिन का महत्व केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं था, बल्कि उसे एक सांस्कृतिक जीवन की ओर ले जाना भी था। इसी में से दलित लेखकों का पहला सम्मेलन आयोजित किया गया था। यह सम्मेलन असल में दिसंबर 1956 में ही ड़ॉ. बाबा साहेब अंबेड़कर के मार्ग निर्देशन में होने जा रहा था, परंतु नियति को कुछ और ही मंजूर था। क्योंकि इसी समय एकाएक ड़ॉ. अंबेड़कर के महानिर्वाण के कारण यह सम्मेलन रुद्ध हो गया। ’[1]

हिन्दी में दलित साहित्य का चित्रण प्रेमचंद कालीन साहित्य से शुरू होता है। मगर उसका साहित्यांदोलन तथा अवधारणा का जन्म स्वतंत्र्योत्तर भारत में हुआ। ‘ दलित साहित्य ’ नामकरण पर विद्वानों में मतभेद हैं। अंबेड़करवादी दलित साहित्यकार दलित कविता के स्थान पर ‘अंबेड़करीय कविता ’ नाम पर अधिक बल देते हैं। ड़ॉ. प्रेम शंकर, ड़ॉ. रामदयाल मुंड़ा, रघुनाथ प्यासा, ड़ॉ. शकुंतला चौधरी, रामविलास शास्त्री, ड़ॉ. नगीना सिंह, तिरखा राम, निशांत, दुर्गाप्रसाद आदि उनमें प्रमुख हैं। ड़ॉ. देवेंद्र दीपक इस प्रकार की कविताओं को ‘अंत्यज कविताएँ ’ कहते हैं। उन्होंने अपना काव्य संग्रह ‘हम बौने नहीं’

की भूमिका 'पूर्विका' में लिखा है, 'ये अंत्यज कविताएँ हैं। .....सामाजिक और आर्थिक न्याय से वंचित व्यक्तियों की व्यथा और संघर्ष स्फूर्ति ही इन कविताओं का केन्द्रीय भाव है। अंत्यज कविताओं में आक्रोश है।' [2] दलित चेतना का दायरा सीमित नही हैं, उसका बहुत ही व्यापक क्षेत्र है। ड़ॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी दलित साहित्य के विस्तृत परिप्रेक्ष्य को सूचित करते हुए लिखते हैं, 'दलित साहित्य' में प्रयुक्त शब्द के अंतर्गत संविधान और शासन द्वारा घोषित अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लोग ही नहीं आते, अपितु दलित शब्द एक संवेदन है, विचार है, जिसका अर्थ दबाया गये से हैं, दबा हुआ नहीं। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से शास्त्र एवं शस्त्र के बल पर दबाया गया मनुष्य किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मत, पंथ एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो सकता है।' [3]

बाबा साहेब अंबेड़कर की विचार धारा के बलबूते पर दलित साहित्य खड़ा है। 'हिन्दी के दलित साहित्य का एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य भी है, जो उसे व्यापक दृष्टि प्रदान करने के साथ ही सृजन कर्म में अपेक्षित शक्ति भी देता है। अंबेड़करवादी विचारधारा इस दलित साहित्य के लिए पुष्ट सैद्धांतिक आधार के रूप में सहज सुलभ है। यह समृद्ध बौद्धिक निधि दलित साहित्य के विकास की अपार संभावनाओं की ओर स्पष्ट संकेत है।'[4] अंबेड़कर ने बहुजन समाज को अपनी विचारधारा का आधार माना है। इसलिए दलित साहित्य को 'अंत्यज ' या 'अंबेड़करीय ' आदि शब्दों से अभिहृत करना संगत नहीं है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, 'दलित शब्द व्यापक अर्थ बोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवन- यापन करने के लिए बाध्य जन- जातियाँ और आदिवासी, जरायमपोश घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती है, सभी वर्ग की स्त्रियाँ दलित है। बहुत कम श्रम- मूल्य पर चौबीसी घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बंधुआँ मज़दूर दलित की श्रेणी में आते हैं। '[5] दलित साहित्य ने अपना अस्तित्व कायम रखा है और वह अन्य मूल साहित्य की धारा के साथ बहने लगा है। मोहनदास नैमिशराय का कथन है, 'दूर बैठकर कल्पना के आधार पर दलितों की पीड़ा के वर्णन को दलित साहित्य कहना न्यायसंगत नहीं हैं। यह बिल्कुल ऐसे ही होगा दलित, शोषितों को दूर से फेंककर रोटी दान करना। जब कि दलित वर्ग से आए लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अथाह पीड़ा रही, आक्रोश का ज्वार बार- बार उफनता रहा, इसलिए कि वह विषमता के भुक्त भोगी थे।' [6] दलित चेतना एवं साहित्य में सहानुभूति का कोई स्थान नहीं है। वह स्वानुभूति एवं भुक्त- भोगी का साहित्य है। ड़ॉ. मैनेजर पांड़ेय व्यक्त करते हैं, 'दलित साहित्य' को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो दलितों द्वारा दलितों के बारे में गैर- दलित लेखकों का साहित्य और दूसरा दलितों के लिए गैर दलित लेखकों का साहित्य। मेरा मत है कि सहृदयता, करुणा और सहानुभूति के सहारे गैर दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते है और लिखा भी है। लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है, क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति से नहीं, बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है।' [7] प्रमुख दलित कवयित्री ड़ॉ. सुशीला टाकभौरे का कहना है कि 'गैर दलित लेखक भी दलित साहित्य लिख सकता है, किन्तु उस तरह के साहित्य में दलित साहित्य की विशिष्टताएँ खोजना मुश्किल होगा। क्योंकि एक दलित साहित्य के भोगो हुए यथार्थ एवं शोषण की अभिव्यक्ति उतनी संवेदनशीलता के साथ गैर दलित साहित्यकार की रचनाओं में प्रकट नहीं हो सकती।' [8] प्रो. नामवर सिंह दलित साहित्य की पुष्टि का स्पष्टीकरण अपने इस कथन के द्वारा प्रकट करना चाहते हैं,

'वैसे तो दलित लेखकों को मेरे जैसे गैर दलित शुभाशंसा की कोई आवश्यकता नहीं होना चाहिए, फिर भी मैं हिन्दी में दलित साहित्य के इस 'पुनर्जागरण' का स्वागत करता हूँ। 'पुनर्जागरण' शब्द का प्रयोग इसलिए कि हिन्दी में आज से चार सौ साल पहले संत कवि रैदास और अन्य दलित संतों ने अपनी वाणी से कविता को जीवंत बनाया था।' [9] ड़ॉ. सूर्यनारायण रणसुभे अपने मंतव्य को अंबेड़कर की विचारधारा के साथ मिलाना चाहते हैं। ड़ॉ. बाबा साहेब अंबेड़कर ने दलित कौन है? इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'वर्ण व्यवस्था के अनुसार समाज में जो घटक पीढियों से अन्य समाज से अलग किया है, जिस समाज का स्पर्श भी अनुचित माना गया है, वह समाज, अर्थात् जिस समाज को परंपरा से 'अस्पृश्य' माना गया है, इसमें 1. अनुसूचित जातियाँ (Scheduled Caste) 2. अनुसूचित जनजातियाँ (Scheduled Tribe) 3. घूमंतू जातियाँ (N. T)एवं आदिवासी समाज भी इसके अंतर्गत आ जाते हैं। इन तीनों वर्ग के समाज को 'दलित' से संबोधित किया जाता है और इनसे संबंधित जो साहित्य होगा वह दलित साहित्य है। '[10]

दलित चेतना एवं साहित्य हिन्दू वर्ण व्यवस्था से उपजा है। इसलिए दलित साहित्यकारों ने इस जाति व्यवस्था को तोड़ने तथा नई सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने के मात्र सहारे के रूप में दलित साहित्य को स्वीकारा है। दलित साहित्य की अवधारणा ड़ॉ. अंबेड़कर की सामाजिक अवधारणा पर आधारित है। अंबेड़कर ने दलितों को एक सूत्र में बाँधने की भरपूर कोशिश की है। उन्होंने 'दलित' कौन है, विषय पर चिंतनपरक मंतव्य व्यक्त किये हैं। अंबेड़कर ने दलित की परिभाषा भारतीय जाति व्यवस्था के बहुआयामी परिप्रक्ष्य में व्यापक माना है। लेकिन अंबेड़कर पंथी दलित साहित्यकार दलित को सीमित दायरे में लाना चाहते हैं। दरअसल 'दलित' विस्तृत परिभाषा के अंतर्गत आता है। दलित साहित्य दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य है। वह अनुभूति का साहित्य है। गैर दलित साहित्यकार भी दलितों पर लिख सकते हैं। इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। लेकिन वह स्वानुभूति का साहित्य नहीं हो सकता, सहानुभूति का साहित्य है। दलित साहित्यकारों के लेखन में भावात्मक पक्ष अधिक उभरा हुआ दिखता है जबकि गैर दलित साहित्यकारें के लेख में कला पक्ष। पहले में जीवन का पक्ष है और दूसरे में सहानुभूति का। गैर दलित साहित्यकार कला पक्ष पर अधिक बल देते हैं क्योंकि उन्हें दलित जीवन को सही- सही उतारने में अनुभव के पक्ष की कमी होती है। दूसरी तरफ, दलित लेखक अपने जीवन के अनुभवों को आक्रोश का सहारा लेते हुए अपने भावों को व्यक्त करते हैं। श्री रूप चंद्र गौतम को उद्धृत करते हुए हम संक्षेप कर सकते हैं, 'दलित साहित्य से हमारा आशय सामाजिक न्याय के संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों, स्वतंत्रता एवं बंधुता पर आधारित समता के समाज और सत्ता- व्यवस्था की निर्मित संरचना केलिए विचार से, संवेदना से, विचार के धरातल पर सचेत एवं सजग साहित्यकारों की संगठित क्रांति चेतना से सृजित अस्मिता दर्शी साहित्य से है, जिसमें नैतिकता, चरित्र और राष्ट्रीयता का प्राधान्य है। दलित होने की पीड़ा एवं शोषण की प्रथम अनुभूति दलित को ही हो सकती है, न की गैर दलित को। अतः दलित साहित्य का अधिक प्रचलित अर्थ है वह साहित्य, जो दलितों को, दलितों केलिए, दलितों द्वारा रचित है ।' [11]

REFERENCES

1. दलित अवधारणा एवं ओमप्रकाश वाल्मीकी का साहित्यः ड़ॉ. पांडुरंग वैजनाथ महालिंगे, पृ- 39
2. हम बौने नहीं, ड़ॉ. देवेंद्र दीपक, पृ- 7,8
3. सुमन लिपी मासिक ड़ॉ.पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, बंबई, फरवरी- मार्च, 1994, पृ- 24

4. हिन्दी के दलित साहित्य पर वक्तव्य, प्रो. नामवर सिंह, पृ- 23, दलित दखल, सं. ड़ॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', ड़ॉ. रजत राणी 'मीनू'
5. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकी, पृ- 14
6. भारत में दलित लेखकों की संघर्ष यात्रा (लेख): मोहनदास नैमिशराय, भीम चेतना (स्मारिका) 14 अप्रैल 1994 प्र. सं. ड़ॉ. तारा परमार, उज्जैन, पृ- 23
7. लोकमत और दलित साहित्य, मैनेजर पांड़ेय, पृ -103- 104, चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, सं. ड़ॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', ड़ॉ. देवेंद्र चौबे
8. दलित साहित्य में स्त्री प्रश्न, ड़ॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ- 177, दलित दखल, सं. ड़ॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', ड़ॉ. रजत राणी 'मीनू'
9. हिन्दी के दलित साहित्य पर वक्तव्य, प्रो. नामवर सिंह, पृ- 23, दलित दखल, सं. ड़ॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', ड़ॉ. रजत राणी 'मीनू'
10. भारतीय दलित साहित्य मराठी विशेषांक, सं. विट्ठल शिन्दे सप्टे, पृ- 1
11. दलित साहित्य के बदलते तेवर (लेख), रूपचंद्र गौतम, समकालीन भारतीय साहित्य, पृ- 194